स्वतंत्रता के पूर्व भारत में अल्पसंख्यक मुस्लिम नेतृत्व

डॉ0 अजीत पाल
असि0 प्रोफे0, राजनीति विज्ञान विभाग
मदरहुड वि0वि0, रूडकी।
Email: dr.ajeetsingh9111@gmail.com

सारांश

भारत में अंग्रेजी साम्राज्य से पूर्व मुसलमान भारत के शासक थे शासन तथा उच्च सैनिक पदों पर उनका एकाधिकार था। भारत में अंग्रेजी साम्राज्य स्थापना के आरम्भ के वर्षों में भी सरकारी नौकरियों में उनका एकाधिकार सा बना रहा परन्तु धीरे–धीरे शासन और उच्च सैनिक पदों पर हिन्दूओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने लगी और मुसलमानों की संख्या घटने लगी। इसका मूल कारण यह था कि अंग्रेज हिन्दूओं की अपेक्षाकृत मुसलमानों से अधिक खतरा महसूस करते थे। जब अंग्रेजों ने अंग्रेजी भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया तो रही सही कमी भी पूरी हो गयी और मुसलमान ऐसे में अपने आप को ठगा सा महसूस करने लगा और उन्होनें अंग्रेजी शिक्षा का विरोध किया। पुरानी पीढी के मुस्लिम पुराने दिनों को याद करते थे, वे दुःखी थे तथा उस समय के समाचार पत्रों में अपना रोना रोया करते थे। ऐसी परिस्थितियों में सर सैयद अहमद खाँ एवं जस्टिस अमीर अली का भारत के राजनीतिक पटल पर आगमन हुआ और उन्होनें मुस्लिमों मे शिक्षा का प्रचार करना, उन्हें नौकरिया दिलाने के लिए आन्दोलन करना तथा मुसलमानों की खोई हुयी प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना अपने जीवन का ध्येय बना लिया। कालान्तर में जिसकी परणिती मुस्लिम लीग की स्थापना एवं भारत विभाजन के रूप में हुयी।

प्रस्तावना

भारत में अंग्रेजी साम्राज्य से पहले मुस्लिम भारत के शासक हुआ करते थे। भारत में रहने वाले मुसलमानों को हम दो वर्गों में बाँटते है। पहले वर्ग में उन लोगों को रख सकते है जो बाहर से आने वाले व्यापारियों और आक्रमणकारियों की सन्तानें थी। दूसरे वर्ग में उन मुसलमानों को रख सकते है जो वर्ग धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बने। इनमें अन्तर यह था कि पहले वर्ग के लोग शासन सूत्र तथा ऊँचे सैनिक पद संभालते थे, जबकि दूसरे वर्ग के लोग खेती–बाडी और दूसरे छोटे–छोटे काम धन्धे करते थे। यह स्पष्ट है कि छः सौ – सात सौ सालों के मुस्लिम शासनकाल में पहले वर्ग का सरकारी नौकरियों पर एकाधिकार था। ये लोग शासन की भाषा बोलते और लिखते थे। हिन्दूओं के लिए सरकारी ऊँचे पद प्राप्त करना सहज न था जबकि बाहर से आने वाले अभियानियों के लिए ऊँचे पद प्राप्त करना अत्यन्त सहज था। हिन्दूओं की ऊँचे पदों पर संख्या नगण्य ही थी।

अंग्रेज हिन्दूओं के अपेक्षाकृत मुस्लिमों से अधिक खतरा महसूस करते थे इसलिए उन्होनें मुस्लिमों को कमजोर करने के लिए हिन्दू हितो को महत्व दिया और मुस्लिमों की उपेक्षा की। पहले मुस्लिमों का उच्च सैनिक पदों एवं अन्य सामरिक महत्व के पदों पर लगभग एकाधिकार सा था, परन्तु धीरे–धीरे अंग्रेजों के उपेक्षापूर्ण रवैये के कारण मुस्लिमों की सरकारी नौकरियो में संख्या लगातार कम होती चली गयी।

जब अंग्रेज लोग विभिन्न क्षेत्रों पर आधिपत्य जमाते गये तब मुस्लिम अभिजात वर्ग अत्यधिक विक्षुब्ध होने लगा। पहले मुस्लिम अभिजात वर्ग वसूली करने वालो तथा शासको के बीच महत्वपूर्ण कडी था। जैसे–जैसे कम्पनी की स्थिति सुदृढ होती गयी, वैसे–वैसे वह इसी कडी को या तो बलात हटाती गयी या इसे स्वयं नष्ट होने देती रही। कम्पनी भूप्रबन्ध के नियमों मे हेर फेर करती रही और फिर जब उसने 1793 की स्थायी भू–व्यवस्था खत्म की तब इस फालतू अभिजात वर्ग का खात्मा ही हो गया। इससे वसूली करने वाले हिन्दू की पदोन्नति हुई।

अभी तक इनके पद महत्वूपर्ण नही समझे जाते थे। अब इनकी स्थिति भू–स्वामियों की हो गयी। ये सम्पन्न होने लगे और जो धन बीच मे मुस्लिम अभिजात वर्ग पाता था वह इनको प्राप्त होने लगा। वसूली के साथ–साथ जो कुछ अवैध रूप से उक्त वर्ग प्राप्त करने में सफल होता था अबवह उससे भी वंचित हो गया।[2]

धीरे–धीरे कम्पनी ने मुस्लिम अभिजात वर्ग के लिए सेना के द्वार बन्द कर दिये। ऐसा करना अंग्रेजो ने अपनी सुरक्षा एवं मुस्लिमों के लिए आवश्यक समझा। 1838 तक सरकारी नौकरियों में हिन्दूओं एवं मुस्लिमों की संख्या लगभग बराबर थी। 1851 तक जब अंग्रेजी राजभाषा का पद प्राप्त कर चुकी थी, मुस्लिम अपने पदो पर बने रहे और उनका योग हिन्दूओं एवं अंग्रेजों के बराबर बना रहा। 1851 के बाद स्थिति बदलने लगी। 1852 से 1868 तक 240 भारतीयों की नियुक्ति हुई जिनमें 239 हिन्दू थे और 1 मुस्लिम था।[3]

जब अंग्रेजों ने अंग्रेजी को राजभाषा का दर्जा देने के लिए प्रस्ताव पारित किया तो हिन्दू नेताओं ने उसका हार्दिक स्वागत किया परन्तु मुसलमानों को इससे पीडा हुई। हिन्दूओ ने इसका समर्थन किया परन्तु मुसलमान इससे अत्यन्त विक्षुब्ध हुये। एच0एच0 विलसन ने लिखा है ''सरकार के पास उपलब्ध निधियों को अंग्रेजी शिक्षा के लिए भविष्य में लगाने के लिए जो प्रस्ताव पारित हुआ उसके विरूद्ध कलकत्ता के 8000 मुसलमानों ने विरोध पत्र भेजा। इस पर हस्ताक्षर करने वाले कलकत्ता के मुल्ला, मौलवी तथा शहर के संभ्रान्त मुस्लिम नागरिक भी थे। इस विरोध पत्र में सामान्य सिद्धान्तों की आलोचना करने के उपरान्त यह भी कहा गया था कि इस प्रस्ताव के पीछे स्पष्ट उद्देश्य ही भारतवासियों को धर्मान्तरित करना था। सरकार मुस्लिम एवं हिन्दू ग्रन्थों की उपेक्षा तथा खाली अंग्रेजी को इसलिए बढावा देना चाहती है कि लोगों को ईसाई होने का प्रलोभन दिया जा सके।''[4]

यूरोपीय शिक्षा पद्धति से विमुख रहने के कारण मुस्लिम नये धन्धों से विमुख रहे। उन्होनें अंग्रेजी चिकित्सा के प्रति घृणा प्रदर्शित की और मेडिकल कॉलेज में प्रशिक्षण के लिए नही गये।

1869 में जिन 104 लोगों को चिकित्सा सम्बन्धी लाईसेंस मिला उनमें से 98 हिन्दू थे, पाँच गोरे तथा एक मुस्लिम।[5]

पुरानी पीढी के मुस्लिम पुराने दिनों को याद करते थे परन्तु अब मुस्लिम सभी विभागों से नदारद थे। मुस्लिम बहुत दुःखी थे और उस समय के समाचार पत्रों में अपना रोना रोया करते थे।[6]

14 जुलाई 1869 के अंक मे मुस्लिमों की भावनाओं को व्यक्त करते हुए कलकत्ता के फारसी भाषा के पत्र ''दूरबीन'' ने कहा था 'सभी छोटे–बडे पद धीरे–धीरे मुस्लिमों से छीने जा रहे है और दूसरी जातियों के लोगों को विशेषतः हिन्दूओं को दिये जा रहे है। सरकार को अपनी प्रजा पर एक सी दषष्टि रखनी चाहिए जबकि सरकार राजपत्रों में सार्वजनिक रूप से घोषित करती है कि रिक्त स्थानों पर केवल हिन्दूओं को ही लिया जायेगा। सरकारी नजर में मुस्लिम इतने गिर गये है कि अब यदि उनमें सरकारी पद प्राप्त करने की योग्यता भी है तो भी सरकारी सूचना निकालकर उन्हें इन पदों से वंचित किया जा रहा है और उनकी इस असहाय दशा पर ध्यान देने वाला भी कोई नही है और उच्च अधिकारी तो उनका अस्तित्व मानने के लिए भी तैयार नही है।[7]

ऐसी परिस्थितियों के परिणामस्वरूप सर सैय्यद अहमद खाँ और जस्टिस अली का राजनीतिक पटल पर आगमन हुआ जिन्होनें मुस्लिमों में शिक्षा प्रचार करना तथा उन्हें नौकरियाँ दिलाने के लिए आन्दोलन करना अपने जीवन का ध्येय बना लिया।

सर सैय्यद अहमद खाँ

अंग्रेज समर्थक के रूप में सर सैय्यद अहमद खाँ का शैशव और युवावस्था मुगल दरबार में व्यतीत हुआ। यहाँ उन्होनें सम्राट की स्थिति का खोखलापन और उनकी मायावी सत्ता देखी थी और अंग्रेजों की शक्ति भी देखी थी। 1839 में जब वे 20 वर्ष के थे तभी उन्होनें सम्राट के साथ रहना अस्वीकार कर दिया था और अंग्रेज सरकार की नौकरी कर ली थी, इससे उनके सम्बन्धियों को बहुत असन्तोष हुआ।

पहले तो उनको लिपिक बनाया गया और बाद में मुंसिफ बने। वे अंग्रेजी नही जानते थे फिर भी वे विद्वान थे और उन्होनें कई महत्वपूर्ण कृतियों की रचना की थी। उन्होनें कई महत्वपूर्ण कृतियों का पुरातत्वीय इतिहास लिखा। इसी कारण उन्हें रॉयल एशियाटिक सोसाइटी का भी सदस्य बना दिया गया। वे अंग्रेजों पर इतने अधिक मुग्ध थे कि उनकी तुलना में भारतीय लोग उन्हें पशु के समान प्रतीत होते थे। 1857 की क्रान्ति में उन्होनें अंग्रेजो का पक्ष लिया था अतः उन्हें अपने सहधर्मियों का कोपभाजन बनना पडा था। सरकार ने उनकी सेवाओं के लिए उनकी बहुत अधिक प्रशंसा की थी और उन्हें यथेष्ठ पुरस्कार भी दिया था।[8]

सर सैय्यद अहमद खाँ की निष्ठा इस सीमा तक पहुँची थी कि इन्होनें सरकार की इस सम्बन्ध में आलोचना की कि सरकार हिन्दू–मुस्लिम भेदभाव का उपयोग भारतीय सेना के प्रति हिन्दु व मुसलमानो की निष्ठा बनाये रखने के लिए नही करती। विप्लव के कारणों पर प्रकाश

डालते हुए उन्होनें कहा था कि भारत में अंग्रेज सैनिक व्यवस्था हमेशा दोषपूर्ण रही है और एक बडा दोष यह भी है कि सेना में अंग्रेज अधिकारियों की भर्ती हमेशा आवश्यकता से कम रही।[9]

1864 में सर सैय्यद अहमद खाँ ने 'अलीगढ अनुवाद समाज' की स्थापना की जिसका बाद में नया नाम नामकरण हुआ 'अलीगढ वैज्ञानिक समाज'। इसके अतिरिक्त सदस्य तो मुस्लिम सरकारी अफसर थे परन्तु अंग्रेज अफसर भी इसके सदस्य थे। मुस्लिम अभिजात वर्ग तथा अंग्रेजों की सहायता से उन्होनें एक–एक ईंट जोड–जोड कर ऐसा महल बनाया, जिसमें अंग्रेजी की शिक्षा मुस्लिमों को दी जाने लगी।[10]

जिस समय उक्त कॉलेज अस्तित्व में आया उस समय भारतीय राष्ट्रीयता दबी जबान से, विशेष रूप से महाराष्ट्र और बंगाल में, अपने को व्यक्त करने लगी थी। सर सैय्यद अहमद खाँ के कथनों से ऐसा आभास होने लगा था कि उच्च श्रेणी के राष्ट्रीय नेता होंगे। एक बार उन्होंने कहा था 'यह याद रखिये कि हिन्दू और मुस्लिम दो धार्मिक शब्द है, अन्यथा हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई एक राष्ट्र के अंग है। अब वह समय बीत चुका है जब धर्म के आधार पर देशवासियों को दो विभिन्न राष्ट्रों मे विभक्त किया जाये।

एक और अवसर पर पंजाब में हिन्दूओं की सभा में उन्होनें कहा था 'आप जिस हिन्दू शब्द का प्रयोग अपने लिये करते है वह ठीक नही है, क्योंकि मेरी दृष्टि से धर्म का नाम नही है। हिन्दुस्तान का हर वासी अपने आप को हिन्दू कह सकता है। आप मुझे हिन्दू नही समझते, जबकि मैं हिन्दुस्तान का वासी हूँ। हिन्दू भी सर सैय्यद अहमद खाँ को राष्ट्रवादी नेता समझते थे।[11]

जब सर सैय्यद अहमद खाँ को भारतीय एवं यूरोपियनों में भेद दिखाई पडा तो उनके आत्मसम्मान को आघात लगा। आगरा में हुए दरबार से वे उठकर चले आये थे क्योंकि यूरोपियनों के लिए मंच पर बैठने का प्रबन्ध था और भारतीयों के लिए नीचे। तहजीब–उल–इख्लाक में उन्होनें लिखा : ''कोई राष्ट्र तब तक आदर सम्मान प्राप्त नही कर सकता जब तक वह शासक जाति से समता न प्राप्त कर ले औ देश के शासन में भागी न हो। यदि हिन्दू और मुस्लिम मामूली लिपिकों जैसे सरकारी पद सुशोभित करते रहेंगे तो अन्य राष्ट्रों की दृष्टि में उनका कोई आदर नही होगा। फिर वह शासन भी आदर का भाजन नही हो सकता जो अपनी प्रजा का उचित सम्मान न करता हो। आदर तो तभी प्राप्त हो सकता है जब मेरे देशवासियो को भी वे सभी ऊँचे पद प्राप्त हो सके जो शासक जाति के लोगों को प्राप्त है।'' 'तहजीब–उल–इख्लाक' सर सैय्यद अहमद खाँ की पत्रिका थी जिसके माध्यम से वे उस सामाजिक रूढिवाद पर प्रहार करते थे जो अनेक परिवर्तनों और उन्नति के मार्ग में बाधक था और जो इस्लाम की उच्च शिक्षाओं के लिए घातक था।[12]

1877 में सर सैय्यद अहमद खाँ श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के सम्पर्क में आये और उनके इण्डियन एसोसिएशन से सम्बद्ध हुए। इस संगठन का उद्देश्य भारतीय सिविल सेवा में भारतीयों के लिए समान अवसर और सुविधायें प्राप्त करना था क्योंकि इस समय भारतीयों का अनुपात नगण्य ही था।[13]

सर सैय्यद अहमद खाँ जो पहले राष्ट्रवादी नेता थे बाद में वह बेक के सम्पर्क में आकर अलगाववादी बन गये। बेक पर्दे के पीछे सूत्रधार बना रहा और अलीगढ आन्दोलन को उसने हिन्दू विरोधी, कांग्रेस विरोधी मोड दे दिया। बेक का उद्देश्य मुस्लिमों को हिन्दूओं और कांग्रेस से दूर रखना था। इसके लिए उन्होनें अलीगढ कॉलेज के अधिकष्त पत्र 'इन्स्टीट्यूट गजट' की सम्पादकीय कमान संभाल ली और हिन्दूओं और कांग्रेस के खिलाफ विष वमन करना प्रारम्भ कर दिया। इसके लिए हिन्दूओं ने सर सैय्यद अहमद खाँ को अपना दुश्मन मान लिया। वास्तव में बेक ने धीरे–धीरे राष्ट्रवाद पर आधारित सर सैय्यद अहमद खाँ की नीतियों को डूबो कर रख दिया।

1888 में सर सैय्यद अहमद खाँ ने लखनऊ में जो भाषण दिया उससे पता चलता है कि उस समय तक वे कितने कट्टर अलगाववादी बन गये थे। ''मेरी समझ में नही आता है कि राष्ट्रीय कांग्रेस है क्या? क्या यह समझा जाये अलग–अलग जातियों व धर्म के जो लोग भारत में रह रहे है वे एक राष्ट्र के लोग है या एक राष्ट्र के लोग बन सकते है और उनके नाम और उनकी आकांक्षायें एक जैसी हो सकती है? जो कांग्रेस चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न आये, भारत को एक राष्ट्र मानती है, वैसी हर कांग्रेस का मैं विरोध करता हूँ।''[14]

उन्होंने यह भी कहा कि ''यदि अंग्रेज चले जायेगें तो हिन्दू और मुस्लिम सत्ता में सहभागी नही बन सकते, क्योंकि यह अनिवार्य है कि उनमें से एक दूसरे को पराजित कर दें।''[15]

जस्टिस अमीर अली

सर सैय्यद अहमद खाँ के विपरीत अमीर अली पहले तो राष्ट्रीय राजनीति की ओर झुके परन्तु बाद में वे पूर्णतः मुस्लिम हितो के साधन मे लग गये। उन्होनें इंग्लैण्ड में बैरिस्ट्री की शिक्षा प्राप्त की थी और 1873 में बैरिस्टरी करने लगे थे। 1877 में उन्होंने 'सेन्ट्रल नेशनल मोहम्मडन एसोसिएशन' बनायी और 25 वर्ष तक उसके मंत्री रहे।

1890 में वे हाई कोर्ट के जज बनाये गये। इस पद पहुँचने के वाले वे पहले मुस्लिम थे। 1904 में उन्हें प्रीवी कौंसिल में ले लिया गया। इस पद पर पहुँचने वाले वे पहले भारतीय थे।

अमीर अली का संगठन आरम्भ में छोटे–छोटे समाज सेवा के कार्य करता रहा परन्तु 1882 में इसने वष्हद रूप धारण कर लिया और देश के समस्त मुस्लिमों का संरक्षक बन गया।[16]

अमीर अली ने यह संगठन इसलिए बनाया कि वैध तथा अन्य माध्यमों द्वारा मुस्लिमों का कल्याण हो। इन्होने ब्रिटिश समाज के प्रति सत्यनिष्ठ रहने का वचन दिया तथा यह आशा की गयी कि पुरानी श्रेष्ठ परम्पराओं से यह प्रेरणा प्राप्त करेगा और पाश्चात्य संस्कषति एवं इस युग की प्रगतिशील प्रवृत्तियों में समन्वय स्थापित करेगा।

इस एसोसिएशन का उद्देश्य मुस्लिमों का पुनरोत्थान करना था और यह तभी सम्भव था जब वह अपना नैतिक उत्थान करके सरकार से उचित और न्यायपूर्ण अभ्यर्थन स्वीकृत करने के लिए प्रयत्नशील होगा। इस संगठन को इस बात की भी बहुत अपेक्षा नही थी कि मुस्लिमों का कल्याण बहुत कुछ भारत की अन्य जातियों की समृद्धि पर आश्रित है। इसलिये सामान्य

जनहित की बातों का पक्ष समर्थन करना तथा उन्हें बढावा देना भी इसके क्षेत्र में है।[17]

इस संगठन से यह आशा भी की गयी कि यह मुस्लिमों के लिए कार्य करते हुए अपने गैर मुस्लिम साथियों के हितो की भी रक्षा करेगा और यह उनकी अभिव्यक्तियों को ब्रिटिश सरकार तक पहुँचायेगा।[18]

अमीर अली का यह मत था कि भारतीय मुस्लिम शिक्षा की दृष्टि से पिछडे हुए हैं अतः उनके लिए एक ऐसे संगठन की आवश्यकता है जो कि शैक्षणिक संस्थाये खुलवाये और सरकारी नौकरियों में मुस्लिमों को हिस्सा दिलाने के लिए आन्दोलन करे। सेन्ट्रल नेशनल मोहम्मडन एसोसिएशन ने यह दायित्व काफी हद तक पूरा किया।[19]

अमीर अली में भारत के अनेक सुदूर इलाकों की यात्रायें की, अपने संगठन के उद्देश्यों का प्रचार किया, उसकी शाखायें खुलवायी और मुस्लिमों को संगठित होने के लिए कहा। उन्होनें कलकत्ता से कराची तक की यात्रा की और मुस्लिमों से एक ऐसा महाविद्यालय स्थापित करने की आवश्यकता पर बल दिया जिसमें मुस्लिमों को धार्मिक और नैतिक शिक्षा भी प्राप्त हो और साथ ही साथ उन्हें धर्म निरपेक्ष शिक्षा भी मिले।[20]

वे धुन के इतने पक्के और कार्यक्षम थे कि हिन्दूओं ने भी उनके कार्य में योगदान किया। इस संगठन के सम्मानित पदों पर कुछ हिन्दू भी थे और यूरोपियन भी।[21]**देवबंद विचारधारा**

सन् 1857 के संग्राम में भाग लेने वाले उलेमाओं द्वारा देवबंद में दारूल उलूम स्कूल की स्थापना की गयी। इस स्कूल के दो उद्देश्य थे, प्रथम मुसलमानों में कुरान और हदीस की सच्ची शिक्षा का प्रसार एवं द्वितीय भारत के विदेशी शासकों के विरूद्ध जेहाद की भावना सजीव रखना। इनका विचार था कि स्वतन्त्रता न केवल भारतीयों के लिए बल्कि दुनिया के मुसलमानों के लिए आवश्यक थी। लेकिन उनमें यह देख सकने की स्पष्ट दृष्टि थी कि भारत को हिन्दू–मुस्लिम एकता और सहयोग के बिना स्वतन्त्रता नही मिल सकती। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का स्वागत किया। सन् 1888 में जब सर सैय्यद अहमद खाँ ने ब्रिटिश शासकों के इशारों पर मुसलमानों को सलाह दी कि वे कांग्रेस का समर्थन न करे तो देवबंद के मुल्लाओ ने सर सैय्यद अहमद खाँ के रूख की निंदा की। देवबन्दी विचारधारा को मानने वालो मे महमूद अल हसन, हुसैन अहमद मदनी, ओबेदुल्ला सिंधी आदि मुख्य थे।[22]

अतः भारत में मुस्लिम सम्प्रदाय में दो प्रकार के नेता थे, आधुनिकतावादी और परम्परावादी। प्रथम कोटि के नेता उस समुदाय से उभरे थे जिसने पाश्चात्य ढंग से स्थापित व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा पायी थी, दूसरी कोटि के नेता उन लोगों में से थे जिन्होनें मध्ययुगीन ढंग से अरबी और फारसी स्कूल में पढाई की थी।[23]

आधुनिकतावादी नेताओं ने पश्चिम का प्रभाव सीधे ग्रहण किया। अतः यह स्वाभाविक था कि आधुनिकतावादी मुस्लिम विचारको का प्रभाव शिक्षित वर्ग पर परिलक्षित होगा। इनकी संख्या अधिक नही थी परन्तु संख्या के अनुपात में उनका प्रभाव काफी अधिक था। मुस्लिम समुदाय का नेतष्त्व बौद्धिक लोगों के हाथो में था जो व्यावसायिक वर्ग, आधुनिक व्यापार,

वाणिज्य व्यापार, वाणिज्य में संलग्न लोगों, जमीदारों, वकीलों, सरकारी कर्मचारियों एवं पत्रकारों आदि में से उभरे थे। ये ही नेता मुस्लिम जनमत के प्रवक्ता थे। भारत सरकार इन मुस्लिम नेताओं को पष्थक समूह मानती थी क्योंकि वह उनका सहयोग चाहती थी। सरकार ने इनसे सलाह लेना तथा अपने उद्देश्य के लिए इस्तेमाल करना शुरू किया। उनके प्रति सरकार के झुकाव और पक्षपात के कारण उनके अपने सम्प्रदाय के अन्तर्गत उनकी प्रतिष्ठा और महत्व बढा।[24]

परम्परावादी नेताओं का जनता पर निःसन्देह सुनिश्चित नियन्त्रण था लेकिन उनकी अपील राजनीतिक अपील न हो कर धार्मिक थी। वे निरक्षरों, गरीब किसानों और मजदूरों को ध ार्मिक प्रश्नों पर उकसा सकते थे और प्राणों की आहूति देने के लिए उत्प्रेरित कर सकते थे। उनमें से कुछ ने स्वाधीनता संग्राम में बडी बहादुरी से हिस्सा लिया था लेकिन कुल मिलाकर उनका सहयोग राष्ट्रीय और सामुदायिक आन्दोलनों में गौण ही रहा। स्वाधीनता प्राप्ति में उनका काफी महत्व रहा, लेकिन उनमें राजनीतिक दषष्टि से मतैक्य न था और उनकी अपेक्षा आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त नेताओं का अधिक महत्व रहा। जो जन साधारण पाश्चात्य प्रभाव में नही थे वे भी रोजी–रोटी के ख्याल से शुद्ध धर्म की बजाय राजनीति की ओर अधिक आकर्षित थे।[25]

आधुनिकतावादी नेताओ ने हिन्दूओं के विरूद्ध मुस्लिमों के भय और ईर्ष्या का युक्तिपूर्वक लाभ उठाते हुए परम्परावादी नेताओं की अपेक्षा अपना सिक्का जमा लिया था।

संदर्भ ग्रंथ

1. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ **13**
2. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **15**
3. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **15**
4. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **18**
5. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **26**
6. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **26**
7. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **26**
8. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **41–42**
9. ग्राहम, लाइफ एण्ड वर्क्स ऑफ सर सैय्यद अहमद खाँ, पृष्ठ संख्या **19**

10. तुफैल अहमदः *मुसलमानों का रोशन मुस्तकबिल,* पृष्ठ संख्या 283, प्रकाशित सर सैय्यद अहमद खाँ के भाषण संग्रह, मजमुएनोट्स, पृष्ठ संख्या **167**
11. तुफैल अहमदः *मुसलमानों का रोशन मुस्तकबिल,* पृष्ठ संख्या **283**, प्रकाशित सर सैय्यद अहमद खाँ के भाषण संग्रह, मजमुएनोट्स, पृष्ठ संख्या **167**
12. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ **45**
13. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **45**
14. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **62**
15. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **62**
16. दी रूल्ज एण्ड ऑब्जेक्ट्स ऑफ दी नेशनल एसोसिएशन विद ए किस्ट ऑफ दी मेम्बर्स, 1882 (राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता)
17. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970 पृष्ठ संख्या **47**
18. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **47**
19. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **48**
20. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **48**
21. रामगोपाल भारतीय, *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1970, पृष्ठ संख्या **47**
22. तारा चन्द – भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास (खण्ड–तीन), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाल हाऊस, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ संख्या **285**
23. कृष्ण दत्त, *भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं राष्ट्रीय एकता,* अनुबुक्स प्रकाशन, मेरठ, 1989 पृष्ठ संख्या **146**
24. कृष्ण दत्त, *भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं राष्ट्रीय एकता,* अनुबुक्स प्रकाशन, मेरठ, 1989 पृष्ठ संख्या **146**
25. कृष्ण दत्त, *भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं राष्ट्रीय एकता,* अनुबुक्स प्रकाशन, मेरठ, 1989 पृष्ठ संख्या **148**